Journal Global Values, Vol. XV, No. Special Issue 2024, ISSN: (P) 0976-9447, (e) 2454-8391, Impact Factor 8.888(SJIF)
https://doi.org/10.31995/jgv.2024.v15iS1.018

भारतीय कला संस्कृति में चित्रकला एवं लोककला का विकास

Development of Painting and Folk art in Indian Art Culture

कु० उजाला रानी
बिजनौर (उ०प्र०)
Email: ujalakhandelwaltk@gmail.com

कु० ज्योति रानी
बिजनौर (उ०प्र०)

सारांश:

कला हमेशा से ही मानव की अभिव्यक्ति का माध्यम रही है प्रागैतिहासिक काल से आज तक चित्रकला को नये–नये रूपो तथा तकनीको के माध्यम से कलाकार ने अपने मनोभावो को धरातल पर चित्रित करने का प्रयास किया है। चित्रकला के इस बदलते समय में प्रत्येक कलाकार अपने–अपने सहयोग द्वारा निरन्तर कला का विकास करने में प्रयासरत है तथा चित्रों के माध्यम से सामाजिक परिस्थितियों से अवगत कराता है।

भारतीय परम्पराओं को लोककला के माध्यम से जीवित रखने में महिलाओं ने अपनी मुख्य भूमिका दिखाई है लोककला प्रत्येक क्षेत्र में अलग–अलग पायी जाती है जिसमें लोक कलाकार जनमानस की परम्पराओं तथा त्योहारों के अनुरूप ही अपने भावों को व्यक्त करता है तथा तूलिका और रंगों के मध्यम से चित्रों को आकर्षक बनाने का प्रयास करता है, जिसके परिणाम स्वरूप उसे देखकर हमारे ह्रदय में आन्नद की अनुभूति होती है।

Art has always been a medium of human expression. From prehistoric times till today, artists have tried to portray their feelings on the surface through new forms and techniques of painting. In this changing time of painting, every artist is continuously trying to develop the art through his/her own collaboration and makes one aware of the social conditions through paintings.

Women have shown their main role in keeping Indian traditions alive through folk art. Folk art is found differently in every region, in which folk artists express their feelings according to the traditions and festivals of the people and through the medium of paintbrush and Colors. He tries to make the pictures attractive, as a result of which we feel joy in our heart after seeing them.

मुख्य शब्द:

लोककला, परम्परा, अभिव्यक्ति, आकृतियॉ, संस्कृति, विकास।

Reference to this paper should be made as follows:

कु० उजाला रानी
कु० ज्योति रानी

भारतीय कला संस्कृति में चित्रकला एवं लोककला का विकास

Vol. XV, Sp. Issue
Article No. 18,
pp. 129 - 136

Online available at
https://anubooks.com/journal/journal-globalvalues

DOI: https://doi.org/10.31995/jgv.2024.v15iS1.018

प्रस्तावना

कला अनूभूति की अभिव्यक्ति को कहते हैं। यही कला का व्यापक अर्थ हैं। सृष्टि के साथ ही कला का जन्म स्वीकार किया जाता हैं। किसी भी देश के सांस्कृतिक विकास में कला का विशेष स्थान रहा है।[1] लोक शब्द जाति वर्ग, वर्ण–धर्म, सम्प्रदाय, नगर–ग्राम्य, शिक्षित–अशिक्षित, धनी–निर्धन और विकसित–अविकसित भेदोपभेदो से ऊपर उठकर समष्टि के लिये व्यवहार में आता है। यह कला मानव सभ्यता के अभ्युदय के साथ विकसित हुई हैं। उसके धार्मिक विश्वासों तथा आस्थाओं के नियमन में पली है। भारतीय साहित्य में घर ऑगन की भित्तियों पर स्त्रियों द्वारा चित्रों की उरेहने के उदाहरण मिलते हैं।[2] भारत में लोक कला को स्त्रियों ने ही जीवित रखा है, मॉगलिक पर्वो पर अनेक कलायें विकसित होती रही है जैसे–गोवर्धन पूजा के लिए सम्पूर्ण उत्तर भारत में गोवर्धन की मिट्टी की मूर्तियॉ बनाई जाती है।[3] कुमांयू की पहाड़ियों में कार्तिक मास में शिव और उनके परिवार की मूर्तियॉ उपासना हेतु बनाई है, और बंगाल में दुर्गा की मूर्तियॉ भी सामयिक अवसरों पर बनती है तथा उनके शुभावसरों पर अल्पना सजाई जाती है।[4] लोककला की व्युत्पत्ति और उसके विकास का कोई श्रृंखला–बद्ध और व्यवस्थित इतिहास नहीं प्राप्त होता है, तो भी इसका विकास मानव के विकास के साथ अवश्य हुआ है। आधुनिक लोक कला आदि कला का ही विकसित रूप है।[5] लोककला और आदिमानव का गहरा सम्बन्ध है, इसका उदाहरण हम प्रागैतिहासिक कला की चित्रकला में भी पाते है।[6] स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद फिर से एक चेतना भारत में फैली तथा अपनी दबी हुई महान लोक कला का पुनरूत्थान करने के लिए लोक गीतों को आकाशवाणी द्वारा जनसामान्य तक पहुॅचाने का प्रयास किया जाने लगा। स्वतन्त्रता तथा गणराज्य दिवस पर हर प्रान्त में लोक नृत्य मण्डलियॉ बुलाई जाने लगी।

लोककला पर आधारित चित्रकला व अन्य कलाओं को प्रोत्साहन दिया जाने लगा तथा हर क्षेत्र में लोक कला का आदर हुआ। इस प्रकार हम देखते है कि आज के आधुनिक युग में जिस प्रकार हर वस्तु का आधुनिकीकरण हो रहा है, लोककला अपने परम्परागत रूप में और भी परिष्कृत तथा परिमार्जित होकर पनप रही है, जहॉ–जहॉ भी विशिष्ट नेता या विदेशी अतिथि जाते है उसी स्थान के लोक–नृत्यों से उनका स्वागत किया जाता है।[7]

भारतवर्ष के विभिन्न प्रान्तों में विभिन्न नामों से धरती को अलंकृत किया जाता है। गुजरात में इसे 'साथिया' राजस्थान में 'माण्डना', महाराष्ट्र में 'रंगोली', उत्तर–प्रदेश में 'चौक पूरना', बिहार में 'अहपन', बंगाल में 'अल्पना' और गढ़वाल में 'आपना' कहते है। इनमें विभिन्न रंगो से या उनके चूर्ण से भूमि पर घर के ऑगन में द्वार पर या पूजा के स्थान पर एक आलेखन किया जाता है। यह एक लोक शैली हैं।[8]

लोककला में मुख्य आकृति को अत्यन्त सीधे ढंग से चित्रित किया जाता है तथा चित्रित रूप में मुख्य आकृति को पहचान जा सकता है इसमें शुद्ध तीव्र रंगो का ही प्रयोग किया जाता हैं। जिसके कारण लोक चित्र सर्वाधिक आकर्षक एवं ओजपूर्ण हो जाते है। चित्रकारों ने लोक शैली में चित्र बनाकर उन्हें ललित कला के अभिजात्य वर्ग में स्थापित किया तथा कुछ

चित्रकारों ने लोक प्रतीकों मिथकों एवं मोटिफों को अपने चित्रों में स्थान दिया हैं।[9]

साहित्यावलोकन

- ''भारतीय इतिहास और संस्कृति'', शंकर कुमार, 2013 दिल्ली विश्वविद्यालय, इस पुस्तक में लेखक ने भारतीय संस्कृति परम्परा, प्रथाएँ और लोक चित्रण, सुलेख, मधुबनी कला आदि विषयों को प्रस्तुत किया है तथा बहुत ही सुन्दर सरल भाषा में वर्णन किया है।[10]
- ''भारतीय चित्रकला'', वाचस्पति गैरोला, 1963, इलाहाबाद, प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने प्रागैतिहासिक युग से भारतीय चित्रकला की प्रमुख शैलियों तथा बंगाल की लोक कला पर प्रकाश डाला तथा कलाकरों की ओर ध्यान आकर्षित किया है।[11]
- ''प्रारम्भिक कला में लोककला देवता'' डॉ0 अर्चना श्रीवास्तव, 2020 राका प्रकाशन इलाहाबाद, प्रस्तुत पुस्तक में लेखिका ने भारतीय लोककला में व्यापक रूप से लोक मान्य देवता राम, कृष्ण, शिव और शक्ति (दुर्गा, काली आदि) को सांस्कृतिक रूप से प्रस्तुत किया है। वस्तुतः लोक धर्म तथा लोककला का आधार लोक श्रद्धा ही हुआ करती है। लेखिका ने विद्यार्थियों के लिये ज्ञान वर्धन नवीन पृष्ठ भूमि तैयार की है।[12]
- प्रस्तुत पुस्तक ''भारत की चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास'' लोकश चन्द्र शर्मा, 2018, मेरठ, में लोककला के बारे में स्पष्ट रूप से लिखित सामग्री उपलब्ध करायी तथा लोककला की उत्पत्ति, परिभाषा, प्रकार–रंगोली, माण्डना, अल्पना, साझी, आपना, लीला गुदवाना, अहपन आदि पर प्रकाश डाला है।[13]

शोधपत्र का उद्देश्य

प्रस्तुत शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य भारतीय कला संस्कृति में चित्रकला एवं लोककला का विकास करना है तथा शोधपत्र का यह भी उद्देश्य है हम अपनी संस्कृति तथा परम्पराओं को चित्रकला एवं लोककला के माध्यम से कैसे विकसित करते है। क्योंकि कहीं न कहीं हमारे देश की संस्कृति एवं परम्पराऐं लुप्त होती जा रही है। जिसे बचाने में हमें अपना सहयोग देना चाहिए एवं विद्यार्थियों को भी अपनी भारतीय संस्कृति एवं परम्पराओं से अवगत कराने का हमारा दायित्व होना चाहिए।

लोककला एवं चित्रकला

रंगोली – यह महाराष्ट्र में प्रचलित है। इसमें एक प्रकार के सफेद पत्थर को चूरा करके उसमें रंग मिलाये जाते है, जो विविध प्रकार के होते हैं। इसी को भूमि पर बूरकर आलेखन किया जाता हैं। जिसमें फूल, पत्ते, बेल–बूटे आदि बनाकर मांगल्य की कामना की जाती है। यह वहां के लोक जीवन का अंग है आमतौर पर शादी तथा विभिन्न त्यौहारो आदि पर इसकी रचना की जाती है।

माण्डना – माण्डना राजस्थान, मालवा और निमाड़ क्षेत्र की लोक कला है। इसमें पारंपरिक आकृतियों में ज्यामितीय एंव पुष्प आकृतियों को लिया गया है इन आकृतियों में त्रिभुज, चतुर्भुज,

वृत्त, स्वास्तिक, शतरंज पट का आधार की आकृति आदि मुख्य है। ऐसे आकृतियाँ हड़प्पाकाल में भी मिलती है।

सॉझी – सॉझी उत्तर प्रदेश में गोबर से दीवारों पर चित्रित की जाती है सोने– चॉदी के पन्ने लगे हुये गहने इसमें चिपकाये जाते है, यह नवरात्रि में देवी का स्वरूप है, जिसकी पूजा परम्परागत रूप से होती आई है इसमें भी मानव का मॉगल्य होता है। चोक पूरने में भी दैविक शक्ति का मॉगल्य के लिये आवाहन किया जाता है। इसी प्रकार करवा चौथ पर भी कुछ आकृतियाँ बनाकर पूजा होती है, जो कि सुहागन स्त्रियाँ अपने पति के मॉगल्य के लिये करती है।

अल्पना – अल्पना पश्चिम बंगाल क्षेत्र की प्रमुख लोक कला है यह सामान्यतः त्योहार, व्रत पूजा, उत्सव और विवाह आदि शुभ अवसरों पर सूखे प्राकृतिक रंगो द्वारा बनाई जाती है, अल्पना वेसे ज्यामितीय आकार से बनाई जाती है, परन्तु इसमें देवी–देवताओ के चित्र भी विशेषतः बनाये जाते है। बंगाल में पटुआ कला भी बहुत प्रसिद्ध हैं।

मधुबनी – यह लोककला बिहार के मधुबनी स्थान से सम्बन्धित है मधुबनी लोककला में राधा कृष्ण की लीलाओं को चित्रित किया जाता है, इसमें अधिकांश, गुलाबी, पीला, नीला, लाल, तथा हरे रंगो का प्रयोग होता हैं। मधुबनी लोककला पारम्परिक रूप से विशेष पर्वो या अवसरो पर घरों में बनाई जाने वाली यह कला आज भी बाजारों में लोकप्रिय हैं। मधुबनी लोककला मिट्टी के पात्रों, पंखो और विवाह के अवसर पर प्रयुक्त होने वाले थाल पर भी बनायी जाती हैं।

चोकपूरना – यह लोककला उत्तर प्रदेश में प्रचलित लोक कला है जिसको शुभकार्य (शादी पूजा) में बनाया जाता है तथा चौक पूरने के लिए गोबर, आटा पानी, हल्दी, रोली, चावल आदि का प्रयोग करके चौक को धरती पर पूरा जाता है अर्थात बनाया जाता है।

पटुआ कला – बंगाल की लोक कला का प्रचार आज राष्ट्रीय ही नहीं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर है। बंगाल की लोक कला के प्रचार का साधन पटचित्र रहे है। यह पटचित्र यद्पि व्यापारिक दृष्टि से बनाये जाते है तथापि इन्ही पटचित्रो के द्वारा कला उड़ीसा और उत्तर भारत तक पहुंची पटचित्रो के निर्माता (पट्वे) कलाकार होते है। यह रंगो के प्रयोग सें डिजाइन को बनाने में पट् होते है। इनके द्वारा लोक शैली में अंकित बीच–बीच में देवी देवताओं के चित्र और उनके बॉर्डरों पर चारो ओर पशु पक्षियों का चित्रण बड़ा ही भव्य होता है ।

पटचित्रो के अतिरिक्त बंगाल की लोक कला का दूसरा रूप मिटटी के घड़ो तथा उनके ढक्कनों की चित्रकारी में देखने को मिलते है।[15]

इस चित्रकारी में पुरुष स्त्री, पशु पक्षी, बेल बूटे आदि अनेक तरह की आकृतियों का चित्रण होता है और उनके लिये जिन रंगो का प्रयोग किया जाता है उनमे पीटिया सफेद हल्दिया पीला तथा लाल रंगों की प्रमुखता होती है।[16]

लोक कला से हमारी इतनी निकटता एवं आत्मीयता है की उसकी उपस्थिति को हम सही जगह अनायास ही चिन्ह लेते है एक कलाकार से लेकर साधारण ग्रामवासी में लोककला के लिए सामान अभिरूचि है उसकी सरसता को दोनों सामान रूप से अनुभव करते है क्या घर में क्या बाजार में क्या कला निकेतनों में सर्वत्र ही सभी रूपों को हम पहचान लेते है हमारे मनमानस

पर उसकी लोकप्रियता की छाप अमित रूप से बनी हुयी है ।

लोककला किसी भी राष्ट्र की संस्कृति मर्यादा है। इसके द्वारा हमें सांस्कृतिक एकता का आभास मिलता है। इस दृष्टि से लोककला का राष्ट्रीय महत्व है।

हमारी सांस्कृतिक भाव भूमि को अभिसिचित करके लोककला की धरा सामान गति से निरंतर आगे बढ़ती रही है परंपरा से लोक कला नैसर्गिक रूप से आगे बढ़ती रही। उसको पुरातन और आधुनिक दृष्टि से विभाजित नहीं किया जा सकता इस एकरूपता के कारण उसमे l nkrkt xhvkS mRQyrk cuhjgrhgS[17]

इन लोक कलाओ में रंगो और रेखाओ की अपनी मौलिकता होती है उनमे पृष्ठ भूमि के अनुसार ही रंगो का प्रयोग किया जाता है जिनमे सफेद हरे, पीले, और नील रंगो की अधिकता होती है इन चित्रों की रेखाओ में साधुराई और बारीकी की अपेक्षा भावना भी प्रधानता होती है। मानव समाज और चित्र कला का प्राचीन काल से ही गहरा सम्बन्ध रहा है चित्रकला का विकास भी मानव जाति के जीवन से विकास की श्रृंखला से निरंतर बंधा चला आ रहा है आदि मानव ने जैसे–जैसे आत्मरक्षा के भाव भित्तियों पर अंकित किये है उसी तरह प्राकृति सौन्दर्य का अनुभव करके उसने अपनी कला को रेखाओं द्वारा अभिव्यक्त किया है आज के सभ्य समाज में भी मानव की कल्पनाओं को जाग्रत और सुप्तावस्थाओं के मनो विचारों को चित्रित करने का निरन्तर प्रयास करता आ रहा है। भारतीय चित्र कला का विकास अपनी पूर्व परंपरा के आधार पर प्रकृति के आर्दशवादी एवं आनंदात्मक स्वरुप की अभिव्यक्ति करना ही रहा है। कलाकारों ने अपने स्वरूप को समझने का प्रयास किया जिसके फलस्वरूप भारतीय चित्रकला अपनी अद्वितीयता के कारण विश्व की चित्रकला का समक्ष मस्तक ऊँचा किये खड़ी है चित्रकला की धारा अपनी उसी वेग से प्राचीन परम्परा की धरोहर को अपने अन्तर में समेटे बहती चली आ रही है इसकी गहराई में जाने पर भी उसकी निर्मलता शीतलता उसी प्रकार बनी रहती है। आज हमारे बदलते परिवेश में भी कला का रूप उसी प्रकार निखरा हुआ है उसके उद्देश्य, उसके सिद्धांत उतने ही दृढ है कला सभ्यता और संस्कृति के विकास की आधारशीला है जो आज भी मानव की सहचरी बनी रहती है चित्रों के माध्यम से भी कलाकार आंतरिक अभिव्यक्ति को व्यक्त करता है अथवा कला भी अभिव्यक्ति करने का माध्यम होता है समाज का यह वर्ग सर्वाधिक विस्तृत है जहाँ एक और लोक कलाओं को शुद्ध वेगवान कला रूपों के प्रति आकृष्ट होता है, तो वहीं कला तत्वों को चित्र के अर्थसार के साथ अपनाते हुए स्वीकार तो करता है परन्तु उसमे कला रूपों की कोमलता लय अनुपात, संतुलन, सामजस्य आदि गुणों को प्रभावित करता है। कला मे सत्यम, शिवम् सुन्दरम तीनो गुणों का समावश होना चाहिए ।

भारतीय चित्रण में चित्रकारों ने विभिन्न रूपों की आकृतियों की रेखाओ को गतिमय प्रभाव से प्रस्तुत किया है और चित्रों में अनेक रूप विन्यासो के कारण दर्शको की उनके प्रति रुचि बढ़ जाती है।[18] तथा इन रूपों में कला के सभी तत्वों का उचित ढंग से प्रयोग न हो तो रूप अनाकृर्षित हो जाता है यदि चित्रकला में उसके सभी तत्वों या अंगो का सही–सही उपयोग नहीं होगा तो हम चित्रकला का विकास सही नहीं कर पाएंगे तथा कला के द्वार ही हमारी

संस्कृति का विकास भी होता चला आ रहा है जब हम सांस्कृतिक की बात करते है तो वहां हमे सांस्कृतिक लोककला तथा चित्रकला का संरक्षण करना भी आवश्यक हो जाता है यह मनुष्य को बेहतर मनुष्य बनाने के लिए उपयोगी हैं लोक कलाओ के बिना मनुष्य का जीवन नीरस है इसके माध्यम से हम क्या कुछ नहीं सीखते है इसके बाद भी लोक कलाओ के प्रति उदासीनता का भाव रखा जाता है जो समाज के लिए उचित नहीं है बल्कि लोक कलाओ के द्वारा अपने जीवन को प्रचलित विष्वासों और मान्यताओं के अनुरूप सुख एवं शान्ति में बनाने हेतु पारलौकिक शक्तियों आशीर्वाद प्राप्ति के लिए किया जाता है ।

आज लोक कला की अनदेखी हो रही है लोक कला हमारी संस्कृति का हजारों साल का इतिहास है लोक कला को बचाने व जन–जन तक पहुंचाने तथा उसका विकास हम सबको मिलकर ही करना चाहिए लोककला में नृत्य, संगीत, चित्रण व अन्य कलाओ की खुशबु आती है लोककला सदैव के लिए साश्वत है परन्तु इसका विकास कार्य निरंतर होना चाहिए जिससे हम आदर्श समाज का निर्माण करने में सहायक हो ।

भारतीय चित्र कला के विकास में चित्रकारों ने चार स्तर के चित्रों को अपनी चित्रण भूमि पर अंकित किया है जैसे–

1. भितिचित्र–भित्तियों पर बने चित्र इसके मुख्य उदाहरण हमें बाघ, अजन्ता, बादामी आदि में मिलते है ।
2. चित्रपट–वह चित्र जो चमड़े अथवा कपड़ो पर बनाये जाते है ।
3. चित्रफलक–यह वे चित्र है जो पत्थरो लकड़ी तथा हाथी दांत के फलको पर बनते है।
4. लघुचित्रांकन–पुस्तकों के पृष्ठों कागज के टुकड़ो व वस्त्रो पर बनाये जाते है ।

भारत के अनेक क्षेत्रों में सांस्कृतिक विवधता पड़ती है उसी का असर हमारी लोक कलाओ में भी देखने को मिलता है तथा विभिन्न जाति धर्म के अनुसार भी क्षेत्रीय लोककलाएं भी भिन्न भिन्न होती है जिसका पारम्परिक रूप से पीढ़ी दर पीढ़ी विकास होता चला आ रहा है यही क्षेत्रीय लोक कला हमे अपनी संस्कृति से जोड़े हुए है आज भी विवाह, जन्मोत्सव आदि में लोक कलाओ का अपना विशेष स्थान होता है जैसे द्वारों पर आलंकरित घड़ों का रखना उसमे चावल के चूर्ण डिजाइन उकेरना तथा उसमे पत्ते फूल व नारियल का रखना आदि लोक कला आनंदकारी तथा मंगलकारी मनुष्य से जुड़ी होती है लोक कला तथा चित्रकला दोनों ही कला के रूप है तथा बदलते परिवेश में हमें भी इसके विकास के लिए अपना योगदान देना होगा तथा तभी हम इसका विकास कर पाएंगे ।

इस प्रकार हमारे भारत में अनेक लोक कलाएं आज भी प्रचलित है अलग–अलग क्षेत्रों में अलग–अलग लोक कलाओं का प्रचलन है जैसे गढ़वाल में आपना तथा बिहार में अहपन आदि ये सब लोक कला समाज में परंपरा की पुनरावृत्ति जागृति करती है लोक कला चित्रकारी में भी चित्रकारों को बहुत प्रेरणा मिलती है आज लोक कला पर नये नये प्रयोग करके कलाकार उसके विकास में अपना–अपना पूर्ण योगदान दे रहे है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त शोध पत्र के आधार से स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय कला में चित्रकला एवं लोककला के विकास में कलाकार तूलिका व रंगो एवं अपने–अपने कौशल के द्वारा कला के क्षेत्र में योगदान देता चला आ रहा है। वह अपनी रूचि के अनुरूप ही अपनी कला का प्रदर्शन करता है। लोककला एवं चित्रकला के द्वारा हम अपनी संस्कृति एवं परम्पराओं को पीढ़ी दर पीढ़ी अग्रसर कर रहे है तथा जिसके द्वारा हमे आनन्द और सुख की अनुभूति होती है। क्योंकि लोककलाऐं समृद्ध सांस्कृतिक के साथ मानव परम्परा का एक अभिन्न अंग है। जैसे–जैसे चित्रकला एवं लोककला के क्षेत्रों का पता लगाते है, वैसे–वैसे ही हम कला, समाज संस्कृति के बीच एक सम्बन्ध स्थापित करते है।

इस प्रकार हम कह सकते है कि चित्रकला एवं लोककला का विकास मानव जीवन एवं उनकी सांस्कृतिक परम्परा के साथ–साथ हुआ है। जब–जब कलाकार ने तूलिका के साथ रंगों का उपयोग कर अपने मनोभावों की अभिव्यक्ति चित्र धरातल पर की है, तब–तब चित्रकला एवं लोककला का विकास भली–भॉति हुआ है।

सन्दर्भः

1. लाल, चिरंजी झा (1960) ''कला के दार्शनिक तत्व'' लक्ष्मी कला कुटीर गाजियाबाद उ0प्र0 पृ0सं0– 133
2. अग्रवाल, आर0ए0 (2018) ''कलाविलास भारतीय चित्रकला का विवेचन'' इन्टरनेशनल पब्लिकेशन हाउस मेरठ, उ0प्र0 पृ0सं0– 219
3. अग्रवाल, आर0ए0 (2018) ''कलाविलास भारतीय चित्रकला का विवेचन'' इन्टरनेशनल पब्लिकेशन हाउस मेरठ, उ0प्र0 पृ0सं0– 220
4. अग्रवाल, आर0ए0 (2018) ''कलाविलास भारतीय चित्रकला का विवेचन'' इन्टरनेशनल पब्लिकेशन हाउस मेरठ, उ0प्र0 पृ0सं0– 221
5. लाल, चिरंजी झा (1960) ''कला के दार्शनिक तत्व'' लक्ष्मी कला कुटीर गाजियाबाद, उ0प्र0 पृ0सं0– 135
6. शर्मा, लोकेशचन्द्र (2018) ''भारत की चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास'' कृष्णा प्रकाशन मीडिया प्रा0लि0 (गोयल पब्लिशिंग हाउस) मेरठ, उ0प्र0 पृ0सं0– 168
7. शर्मा, लोकेशचन्द्र (2018) ''भारत की चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास'' कृष्णा प्रकाशन मीडिया प्रा0लि0 (गोयल पब्लिशिंग हाउस) मेरठ, उ0प्र0 पृ0सं0– 171
8. शर्मा, लोकेशचन्द्र (2018) ''भारत की चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास'' कृष्णा प्रकाशन मीडिया प्रा0लि0 (गोयल पब्लिशिंग हाउस) मेरठ, उ0प्र0 पृ0सं0– 168
9. कुमार, शंकर (2013) ''भारतीय इतिहास और संस्कृति'' रतन सागर दिल्ली
10. गैरोला, वाचस्पति (1963) ''भारतीय चित्रकला'' मित्र प्रकाशन प्रा0लि0 इलाहाबाद
11. शर्मा, लोकेशचन्द्र (2018) ''भारत की चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास'' कृष्णा प्रकाशन

मीडिया प्रा0लि0 (गोयल पब्लिशिंग हाउस) मेरठ, उ0प्र0

12. श्रीवास्तव, अर्चना (2020) ''प्रारम्भिक कला में लोककला देवता'' राका प्रकाशन इलाहाबाद
13. शर्मा, लोकेशचन्द्र (2018) ''भारत की चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास'' कृष्णा प्रकाशन मीडिया प्रा0लि0 (गोयल पब्लिशिंग हाउस) मेरठ, उ0प्र0 पृ0सं0–117
14. शर्मा, लोकेशचन्द्र (2018) ''भारत की चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास'' कृष्णा प्रकाशन मीडिया प्रा0लि0 (गोयल पब्लिशिंग हाउस) मेरठ, उ0प्र0 पृ0सं0– 169
15. गैरोला, वाचस्पति (1963) ''भारतीय चित्रकला'' मित्र प्रकाशन प्रा0लि0 इलाहाबाद पृ0सं0 – 247
16. गैरोला, वाचस्पति (1963) ''भारतीय चित्रकला'' मित्र प्रकाशन प्रा0लि0 इलाहाबाद पृ0सं0 – 248
17. गैरोला, वाचस्पति (1963) ''भारतीय चित्रकला'' मित्र प्रकाशन प्रा0लि0 इलाहाबाद पृ0सं0 – 249
18. सक्सेना, डॉ0 सरन बिहारी लाल (2021) ''कला सिद्धान्त और परम्परा'' प्रकाश बुक डिपो पृ0सं0 – 95